

SHIKSHA SAMVAD

International Open Access Peer-Reviewed & Refereed
Journal of Multidisciplinary Research

ISSN: 2584-0983 (Online)

Volume-1, Issue-3, March- 2024

www.shikshasamvad.com



“भारत में उच्च शिक्षा व्यवस्था में वर्तमान समय की आवश्यकताओं के अनुरूप चुनौतियाँ, समस्याएँ एवं समाधान”

मनीष कुमार

शोधार्थी, शिक्षाशास्त्र
श्री वेंकटेश्वरा विश्वविद्यालय
गजरौला (अमरोहा) उ०प्र०

डॉ० धर्मेन्द्र सिंह

शोध पर्यवेक्षक
श्री वेंकटेश्वरा विश्वविद्यालय
गजरौला (अमरोहा) उ०प्र०

प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमता के अनुसार विकसित होने का अधिकार है, मानव अधिकारों की घोषणा में इस तथ्य को मूलभूत रूप से स्वीकार किया गया है। इसके लिए शिक्षा और ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। यह तथ्य सबके लिये शिक्षा की धारणा से बहुत आगे है। फ्रेड्रिक तक ने ज्ञान और शिक्षा में जो अन्तर किया है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उन्होंने इसको दो बिल्कुल अलग बिन्दुओं की तरह बताया है कि बाजार व्यवस्था के अन्तर्गत प्रयुक्त किया जाने वाला बहुतसा ज्ञान न तो मोडीफाई किया जा सकता है और न ही उसका भौतिकता से कोई सम्बन्ध होता है। जैसे कि दर्जी, रंगाई करने वाले, बेकरी वाले आदि अपने क्षेत्र का जो ज्ञान रखते हैं। उसका सम्बन्ध औपचारिक शिक्षा से नहीं होता है। इस प्रकार आर्थिक अवसरों के साधन के रूप में औपचारिक शिक्षा की बड़ी सीमायें हैं। औपचारिक शिक्षा कुछ अलग तरह के लोगों को बनाती है। जैसे— नौकर शाही, प्रबंधक, डॉक्टर, वकील आदि। परन्तु व्यावसायिक शिक्षा के विकास के बावजूद आर्थिक गतिविधियों में संलग्न और सफल बहुसंख्यक समाज अपना ज्ञान शिक्षा केन्द्रों से अलग हट कर पाता है। इसीलिए खिलाड़ी, फैशन मॉडल, फिल्मी कलाकार आदि एक इंजीनियर, एक समाजवादी या एक शिक्षक से कई गुना अधिक पैसा कमाते हैं। ज्ञान के इस पक्ष को आवश्यक रूप से ध्यान में रखना चाहिये।

प्लूटों ने कहा था कि ज्ञान ही अच्छाई है। यद्यपि इस पर आज ढेर सारे प्रश्न खड़े किये जाते हैं, लेकिन आज इससे कोई इंकार नहीं कर सकता है कि शिक्षा ही शक्ति का स्रोत है। आजकल आई0टी0 क्षेत्र में विशेषज्ञ श्रेष्ठतम स्थिति में हैं। आजादी के बाद देश में विश्वविद्यालय, महाविद्यालय तथा विद्यार्थियों की प्रवेश संख्या तेजी से बढ़ी है, किन्तु दुर्भाग्य से वर्तमान में शिक्षा के मात्रात्मक प्रसार के साथ-साथ उसका गुणात्मक मूल्य धीरे-धीरे कम होता जा रहा है और कुछ विशेष केन्द्रों को छोड़कर अधिकांश शिक्षण संस्थाएं डिग्रियाँ बाँटने के केन्द्र बन कर रह गई हैं। शिक्षा के दो उद्देश्य होते हैं— एक तो वह व्यक्ति को शिष्ट सभ्य, सामाजिक नागरिक बनने में मदद करती है, एवं दूसरा यह आजीविका का साधन होता है। वर्तमान भारतीय समाज में जिस प्रकार के व्यक्तिकेन्द्रित प्रवृत्ति, भ्रष्टाचार, व्यभिचार, अपराध एवं एक-दूसरे के प्रति विद्वेष रखने के हालात बने हुए हैं, उससे इस उद्देश्य की पूर्ति की विफलता साफ जाहिर होती है। भारतीय श्रम रिपोर्ट, 2007 में पाया गया है कि रोजगार के अवसर तो है पर उसके लिए काबिल लोगों की कमी है।

तलिका-1

श्रेणी	देश में उच्च शिक्षण संस्थाएं	संख्या
1.	केन्द्रीय विश्वविद्यालय	42
2.	राज्य विश्वविद्यालय	316
3.	समकक्ष (डीम्ड विश्वविद्यालय)	130
4.	राज्य अधिनियम के अन्तर्गत गठित संस्थाएं	05
5.	राष्ट्रीय महत्व की संस्थाएं	13
6.	राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान (एन0आई0टी0)	30
7.	भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (एन0आई0टी0)	15
8.	भारतीय प्रबंधन संस्थान (आई0आई0टी0)	13

9	भारतीय विज्ञान संस्थान (भारतीय विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान संस्थान सहित)	04
11.	शोध संस्थान	136
12.	महाविद्यालय (3432 हिला महाविद्यालय सहित)	31324

स्रोत : (1) वार्षिक रिपोर्ट 2009–10, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली।

(2) वार्षिक रिपोर्ट 2009–10, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

एक तरफ लोग भारतीय प्रतिभा की तारीफ कर रहे हैं एवं दूसरी ओर 80 प्रतिशत लोग प्रतिभाविहीन हैं। रिपोर्ट के अनुसार 53 प्रतिशत युवाओं में वांछित कौशल की कमी पायी जाती है, हालांकि 8 प्रतिशत युवा ही बेकार हैं। रिपोर्ट में साफ-साफ कहा गया है कि शिक्षा प्रणाली में तत्काल सुधार की आवश्यकता है। आज उपलब्ध रोजगार के अवसरों में 90 प्रतिशत व्यावसायिक कौशल की आवश्यकता होती है, जबकि 90 प्रतिशत कॉजेलों और स्कूलों में दी जाने वाली शिक्षा केवल किताबी है। अगले कुछ वर्षों में विश्व की 25 प्रतिशत श्रमशक्ति भारत में होगी। सन् 2025 तक 30 करोड़ युवा श्रमशक्ति के तौर पर उपलब्ध होंगे और अगर वे काबिल हुए तो भारत आर्थिक महाशक्ति बनकर रहेगा।

हैडिक एण्ड स्टलर्स और इकोनॉमिस्ट यूनिट की विश्व प्रतिभा सूची के आँकड़ों के अनुसार आने वाले दिनों में भारत जनांकिकी के आधार पर दूसरे स्थान पर श्रम गतिशीलता एवं खुलेपन के लिए 9वें स्थान पर और प्रतिभाओं को प्रोत्साहित करने के लिए 13वें स्थान पर रहेगा। पर शिक्षा के आधार पर वह 25वें स्थान पर होगा। उल्लेखनीय है कि विदेशी छात्र भारत में शिक्षा सस्ती होने के कारण आ रहे हैं। विदेशी छात्रों को लुभाने के लिए एक नयी नीति 'अंग्रेजी सीखें और भारत में पढ़ें' लागू की गयी है।

वर्तमान में देश में लगभग सभी बुद्धिजीवी इस बात पर सहमत हैं कि इस शिक्षाप्रणाली को तत्काल बदलने की आवश्यकता है। अगर 21वीं सदी में भारत के 6 से 14 वर्ष के छह करोड़ बच्चे अशिक्षित रहते हैं और बेरोजगारों और अर्द्ध-बेरोजगारों की फौज बढ़ती है तो यह गहन चिंता का विषय है। देश में एक ओर कौशल सम्पन्न लोगों की भारी कमी महसूस की जा रही है और दूसरी ओर बड़ी संख्या में लोग बेरोजगार हैं। सरकार इनसे अनभिज्ञ नहीं है, और इस सम्बन्ध में कई योजनाएं घोषित की जा चुकी हैं। सरकार ने 2004 के बजट में अतिरिक्त

साधन जुटाने के लिए 2 प्रतिशत का सेस लगा दिया और इसकी जरूरत भी बताई कि शिक्षा पर व्यय वर्तमान जीडीपी के 3.4 से बढ़ाकर 4 प्रतिशत किया जाये। इसके परिणामस्वरूप परिमाणात्मक वृद्धि हो रही है पर समस्या गुणात्मक वृद्धि की है। स्कूल से लेकर उच्च शिक्षा के हर स्तर पर यह समस्या विद्यमान है। संख्या की दृष्टि से स्कूल और कॉलेज (सरकारी व निजी) की संख्या बहुत अधिक है किन्तु अपवादों को छोड़कर गुणवत्ता की दृष्टि से शिक्षा का स्तर काफी नीचा है। स्कूल से लेकर महाविद्यालय तक कमोवेश परम्परागत पाठ्यक्रम चलाए जा रहे हैं, जिन्हें पढ़ने के बाद रोजगार की संभावना बहुत कम है। रोजगार देने वाले व्यक्तियों को पुनः प्रशिक्षित करना होता है। डिग्रियाँ केवल छंटार्ई करने की प्रक्रिया के रूप में इस्तेमाल होती हैं या फिर आवेदन करने के लिए पासपोर्ट के तौर पर। छात्रों को यह ज्ञात नहीं होता कि उन्हें किन क्षेत्रों में जाना चाहिये और आने वाले दिनों में किस क्षेत्र की मांग होगी। पाठ्यक्रम में दिये जाने वाले ज्ञान की व्यावहारिक उपयोगिता नगण्य होती है और परीक्षा पास करने के लिए स्कूल-कॉलेज जाने की आवश्यकता नहीं होती। वास्तव में ज्ञान अलग है और शिक्षा अलग। समाज को जिस प्रकार के योग्य व्यक्तियों की आवश्यकता है, वे शिक्षाप्रणाली द्वारा उत्पन्न नहीं किये जाते।

विद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों की प्रवेश संख्या ऊँची होने के बावजूद उपस्थिति दर नीची होती है। शिक्षकों को पढ़ाने में रुचि न लेना और शिक्षा में परिवर्तन न चाहना सामान्य प्रवृत्ति है। परीक्षा सम्बन्धी अनियमितताएं एवं अनियमित शिक्षण सत्र आम बात है। शासन का कार्य शिक्षकों के तबादले, प्रोन्नति आदि तक सीमित है। स्वायत्तता का दुरुपयोग होता है और गुणवत्ता के स्थान पर शिक्षक या कुलपति की मर्जी से पढ़ाई निर्धारित होती है। छात्रों के पास बहुत कम विकल्प उपलब्ध होते हैं और मेधावी छात्र भी कोई उपलब्धि प्राप्त नहीं कर पाते। शासन, प्रशासन, शिक्षा विभाग के अधिकारी, प्राचार्य, शिक्षक, पालक सभी एक-दूसरे पर दोषारोपण करते हैं।

विश्व प्रतियोगी वार्षिकी, 2004 के अनुसार भारत 50वें क्रम से 16 स्थान ऊपर उठकर 34वें क्रम पर आ गया है। यह स्थान भारत के लिए अब तक का सर्वाधिक ऊँचा है। इस स्थिति का मुख्य कारण 4 में से 3 सूचकों में भारत का ऊपर होना है। भारतीय व्यवसाय की कार्यकुशलता का क्रम 2003 के 50वें स्थान से उठकर 22वां हो गया है। इस प्रकार आर्थिक संचालन की दृष्टि से देश का स्थान 22वें से उठकर 12वां हो गया है। इतना ही नहीं, प्रशासनिक कुशलता की दृष्टि से भारत का स्थान 43वें से उठकर 34वां हो गया है, किन्तु जहाँ तक अधोसंरचनाओं

और सुविधाओं का सवाल है, वहाँ भारतीय शिक्षा पद्धति अभी भी पिछड़ी हुई है। 2003 में 60 देशों में उसका स्थान 58वां था और यह 2004 में एक अंक के सुधार के साथ 57वां हो गया। सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में शोध बहुत बुरी स्थिति में है। शोध एवं विकास में भारत अपनी राष्ट्रीय आय का सिर्फ 0.6 प्रतिशत ही खर्च करता है, जबकि जापान और अमेरिका में 1996 में ही यह 2.5 प्रतिशत था।

शिक्षा की गुणवत्ता प्राथमिक स्तर से ही बेहतर सुधारी जा सकती है। उसे बाद में सुधारना कठिन है। प्रो० यशपाल ने 1992 में अपनी एक रिपोर्ट में कहा था कि भारत की स्कूली शिक्षा में बड़ी संख्या में आरम्भिक कक्षाओं में ही बच्चों के आक्रांत हो जाने की वजह से उसका दुर्बोध होना है। सूचनाओं से पुस्तक लेखक भी आतंकित रहते हैं एवं पुस्तकों में ज्यादा से ज्यादा सूचनाएँ डाल देते हैं। परिणाम यह होता है कि न तो छात्र और न ही शिक्षक उसे समझ पाते हैं। इतना ही नहीं, पाठ्यक्रम में सुधार के नाम पर उसका स्तर बढ़ा दिया जाता है और तमाम ऐसी चीजें भी दी जाती हैं, जिन्हें उस स्तर के बच्चे नहीं समझ पाते। ऐसी स्थिति में रटने के सिवाय कोई चारा नहीं रहता। इसलिए ज्ञान में कोई वृद्धि नहीं होती। यह बात स्कूलों से लेकर उच्च शिक्षा के स्तर तक विद्यमान हैं। इसलिए छात्र डिग्री पाने के लिए पुस्तकों के बजाय गाइड्स और नकल का सहारा लेते हैं। वर्तमान में कॉरपोरेट क्षेत्र के लोग यही दोहरा रहे हैं कि सैद्धान्तिक व आदर्श की बातों से व्यवसाय नहीं चलता है। तमाम विषय अपने परिवेश से अलग होते हैं। छात्रों को लगता है कि ज्ञान नितांत बाहरी, अनावश्यक और किताबी बात है न कि जीवन में उपयोग आने वाली आवश्यक पूँजी।

शिक्षकों पर डंडा चलाकर शिक्षा को सुधारा जा सकता है। यह धारणा तत्काल बदल देनी चाहिए, क्योंकि शिक्षण कोई कारखाना नहीं है और न ही स्कूल मजदूर, जो कि समय पर जाकर काम चालू कर उत्पादन करना शुरू कर दें। अगर शिक्षक की अंतः प्रेरणा उसे पढ़ाने और सिखाने के लिए तैयार नहीं करती तो दिलाई जा सकती है। उसे कक्षा में निश्चित समय हाजिर तो किया जा सकता है और निर्धारित पाठ्यक्रम पढ़ाने के लिए बाध्य किया जा सकता है, पर शिक्षा छात्रों तक पहुँचेगी, इसकी गारण्टी नहीं ली जा सकती। शिक्षा के लिए मात्र शिक्षक ही जिम्मेदार नहीं है, स्वयं छात्र, परिवार, समाज और सम्पूर्ण वातावरण— ये सभी समान रूप से शिक्षा में योगदान करते हैं। यह जरूरी है कि शिक्षक समय पर कक्षा में जाएं, लेकिन किसी कारणवश कुछ लेट होने पर उन्हें बर्खास्त करने की धमकी या फिर निलम्बित करने से उनकी अभिप्रेरणा पर कितना प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, यह समझने की आवश्यकता है।

जहाँ तक उच्च शिक्षा की गुणवत्ता का प्रश्न है। 1953 में भारत सरकार ने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना की। हालांकि गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए जो अधिकार इस आयोग को सौंपे जाने चाहिये थे, वे नहीं दिये गये। यह बात और है कि राज्यों ने इन अधिकारों की कमी का फायदा नहीं उठाया, पर 2003 में छत्तीसगढ़ राज्य बनते ही यह मर्यादा भी टूट गई और छत्तीसगढ़ सरकार ने एक अधिनियम पास कर राज्य में डीम्ड विश्वविद्यालय खोलने के नियमों में भारी ढील दे दी, जिससे शिक्षा की गुणवत्ता को काफी प्रभावित किया और ऐसी संस्थाएं लाभ कमाने का संस्थान बन गईं न कि व्यावसायिक शिक्षा देने का।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अतिरिक्त एक दर्जन से अधिक व्यवसायिक परिषद् स्थापित की गईं, जिनमें हरेक को अपने क्षेत्र से सम्बन्धित अधिकार दिए गए, जैसे— मेडीकल काउंसिल ऑफ इण्डिया, तकनीकी शिक्षा परिषद, बार काउन्सिल ऑफ इण्डिया, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद आदि। इनमें किसी प्रकार का समन्वय न होने से भी कई प्रकार की समस्याएँ खड़ी हुईं। इस प्रकार विश्वविद्यालय और परिषदों के बीच भी अधिकारों के मामलों में विवाद होता रहता है और शिक्षा की गुणवत्ता को बनाए रखने के मसले पर अधिकांश जिम्मेदारी हरेक पक्ष एक-दूसरे पक्ष पर डाल देता है। वर्तमान में शिक्षा सुधार से सम्बन्धित कई महत्वपूर्ण विधेयक संसद में लम्बित पड़े हैं तथा निकट भविष्य में इनके पारित होने की संभावना नहीं है, क्योंकि शिक्षा-सुधार किसी भी राजनैतिक दल की प्राथमिकता में नहीं है। 1986 की शिक्षा-नीति में एक उच्चस्तरीय संस्था की स्थापना की बात थी, परन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। इन सभी मामलों में शुल्क का मसला भी महत्वपूर्ण रहा और शिक्षा की गुणवत्ता को शुल्क के साथ जोड़ दिया गया। सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अथवा परिषदों के पास ऐसे कोई विशेष अधिकार नहीं है।

शिक्षा की गुणवत्ता के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि हमारा सभ्य नागरिक समाज शिक्षा क्षेत्र में अपनी रुचि न्यूनतम कर लेता है और बावजूद जनभागीदारी समितियों की स्थापना के शिक्षा की गुणवत्ता पर कोई ध्यान नहीं देता। आमतौर पर बातें धनराशि, अधोसंरचना आदि पर आकर अटक जाती है। न्यायालय के फैसलों से इन संस्थाओं को अपनी फीस तय करने का अधिकार दे दिया गया, लेकिन इसके साथ ही अप्रत्यक्ष रूप से इन्हें बहुत सारे कामों की स्वीकृति प्राप्त हो गई। शिक्षा के निजीकरण ने एक ओर सरकार को उच्च शिक्षा के दायित्व से कुछ हद तक मुक्त कर दिया, लेकिन दूसरी ओर निजी संस्थानों को शिक्षा को व्यवसाय

बनाने की छूट भी दे दी। निजी क्षेत्र के प्रवेश करने में कोई आपत्ति नहीं है, बशर्ते शिक्षा को एक व्यवसाय न समझा जाए और उसकी गुणवत्ता पर इससे प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। वर्तमान में अच्छी निजी संस्थाओं और स्तरहीन संस्थाओं के बीच भेद बहुत कम हो चुका है, फलस्वरूप शिक्षा के केन्द्र डिग्रियाँ बांटने वाली संस्थाएं बनकर रह गए हैं।

भारत में उच्च शिक्षा की प्रणाली बहुत बड़ी है, तथापि सम्बन्धित आयुवर्ग के केवल 6 प्रतिशत लोग ही इसका लाभ उठा पाते हैं। सकल राष्ट्रीय आय के अनुपात के रूप में उच्च शिक्षा पर होने वाला व्यय 1980-81 में 0.98 प्रतिशत था, जो 1994-95 में घटकर 0.35, और 2006-07 में मात्र 0.22 प्रतिशत रह गया है। प्रति व्यक्ति शिक्षा पर होने वाला सरकारी व्यय 1990-91 के बाद से निरंतर घटता गया। इस पर गम्भीरता से विचार किया जाना चाहिये। समाज में शिक्षा की भूमिका है और इसे मात्र रोजगार का पासपोर्ट नहीं समझना चाहिये। उच्च शिक्षा से एक व्यक्ति को आंतरिक लाभ तब होता है, जब उस शिक्षा से उसकी धन कमाने की क्षमता बढ़ जाती है, किन्तु शिक्षा आर्थिक और सामाजिक प्रणाली को व्यापक दृष्टि से संचालित करने के लिए भी बहुत आवश्यक है। इन्हें बाह्य प्रकृति के लाभ कहना चाहिए, जिसका लाभ न केवल उस व्यक्ति को होता है जो शिक्षा पाता है, वरन् समाज के अन्य सदस्य भी लाभान्वित होते हैं। शिक्षा की गुणवत्ता प्रभावित होने के कारण इन सारे लोगों से समाज वंचित हो रहा है। विश्व व्यापार संगठन के अन्तर्गत अब शिक्षा के स्वतंत्र व्यापार में सम्मिलित हो जाने से समस्याएँ और भी बढ़ गई हैं। हालांकि यह अलग मुद्दा है, पर इससे भी शिक्षा की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने का खतरा है। शिक्षा के क्षेत्र में मुख्यतः तीन समस्याएँ चिंता का विषय हैं :-

1. महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय में प्रवेश की संख्या का काफी अधिक होने के बावजूद उपस्थिति का हद दर्जे तक कम होना।
2. शिक्षक द्वारा पढ़ाने में रुचि न लेना और शिक्षा में परिवर्तन के प्रति उदासीनता।
3. परीक्षा सम्बन्धी अनियमितताएं तथा अनियमित एवं विलम्बित शिक्षा सत्र।
4. शिक्षा का व्यवसायीकरण एवं बाजारीकरण।
5. नियामक संस्थाओं की दूषित, भ्रष्टाचार युक्त एवं लचर कार्यप्रणाली।

सुझाव :- सबसे पहले यह देखना होगा कि आखिर विद्यार्थी महाविद्यालय / विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के लिए तो बहुत उत्सुक होते हैं, पर पढ़ने के लिए क्यों नहीं जाते? विद्यार्थी जानते हैं कि बाजार में दो चीजों की माँग है, पहला- विषय विशेष से सम्बन्धित डिग्री, जो पासपोर्ट का कार्य करती है। दूसरा- उस विषय का ज्ञान, जो उसे डिग्री पाने के बाद करना

पड़ता है। हमारी शिक्षण संस्थाओं में प्रयुक्त पाठ्यक्रम सामान्य रूप से सैद्धान्तिक प्रकृति का होता है, जिसे यदि विद्यार्थी सही ढंग से समझ ले तो आवश्यकता पड़ने पर कहीं भी प्रयोग कर सकता है। आज न तो शिक्षक विषय को सही रूप में प्रस्तुत करने की स्थिति में है और न ही विद्यार्थियों में इतना धैर्य होता है कि चीज को बारीकी से समझ सकें। परिणाम यह होता है कि विद्यार्थियों को सतही शिक्षा दी जाती है, जिसका व्यावहारिक जीवन में कोई उपयोग दिखाई नहीं देता। हमारे पाठ्यक्रमों वही पुरानी बातें अलग-अलग तरीके से प्रस्तुत की जाती हैं। कभी एक विषय घटा दिया जाता है तो कभी एक विषय जोड़ दिया जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि पढ़ाई और पाठ्यक्रम दोनों में आमूलचूल परिवर्तन लाया जाए। संस्थाओं में मुख्य रूप से दो प्रकार के पाठ्यक्रम होने चाहिए :-

1. **पारम्परिक पद्धति पर आधारित-** जहाँ सैद्धान्तिक विवेचना व्यापक और विशद् रूप में पढ़ाई जाए और उसमें केवल उन्हीं विद्यार्थियों को प्रवेश दिया जाये, जो शिक्षक बनना चाहते हैं या शोध कार्यों में जाना चाहते हैं। इस प्रकार की संस्थाओं की संख्या बहुत सीमित होनी चाहिए और यहाँ शिक्षकों की भर्ती/नियुक्ति बहुत कड़ी कसौटियों से गुजरने के बाद की जानी चाहिये। इसमें तदर्थ या ठेके वाली व्यवस्था नहीं चल सकती। ये सम्बन्धित विषयों में अधोसंरचना से लेकर ऊपर के ढाँचे को बनाने में सहयोग करने वाली संस्थाएं होनी चाहिए।
2. **पूर्णतः व्यावहारिक :-** संस्थाओं को घिसे-पिटे पाठ्यक्रमों को बंद कर देना चाहिये, जिनमें थोड़ा-थोड़ा सभी सिद्धान्तों की चर्चा होती है और जिन्हें वर्तमान में रूटीन तरीके से पढ़ाया जा रहा है। इनमें से कई चीजें विद्यार्थी के लिए अनुपयोगी होती है और उनकी उसमें रुचि नहीं होती हैं पर उसे मजबूरन पढ़ना पड़ता है। इसके स्थान पर ऐसे पाठ्यक्रम चलाए जाने चाहिये जिनकी बाजार में माँग है, जैसे कि आजकल विपणन प्रबन्धन आदि काफी प्रचलित क्षेत्र हैं। यहाँ अलग-अलग प्रकार की वस्तु के विपणन के लिए अलग-अलग प्रकार के पाठ्यक्रम चलाये जाने चाहिए। जितने भी विषय हों वे सब उसी से सम्बन्धित हों। उसे 'जैक ऑफ ऑल' बनो की कोशिश कदापि नहीं होनी चाहिये। संस्थाओं में पाठ्यक्रम बनाने का दायित्व विशेषज्ञों को दिया जाना चाहिए, जो किसी उत्कृष्ट विश्वविद्यालय से जुड़ा पाठ्यक्रम होने चाहिए। आज बैंकिंग, बीमा, पर्यटन, फैशन, विश्व व्यापार, संविलयन और अधिग्रहण, पर्यावरण जैसे अनेक क्षेत्र हैं जिनमें पाठ्यक्रम प्रारम्भ किए जाने चाहिए। इसमें शिक्षकों को पहले अपना ज्ञान बढ़ाना होगा।

अच्छे शिक्षकों की कमी भी एक समस्यास है, जिसका तत्काल कोई हल समझ में नहीं आता सिवाय इसके कि शिक्षकों का चुनाव कड़े मापदण्डों के आधार पर किया जाए और उनको आकर्षित वेतन दिया जाए, जैसे कि अन्य क्षेत्रों के व्यक्तियों को मिलता है।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि उच्च शिक्षा की अकादमिक क्रियाओं एवं उनमें अपनाई जाने वाली आधुनिक तकनीकों के उचित समन्वय से शिक्षा के मूल उद्देश्यों को प्रभावपूर्ण तरीके से प्राप्त किया जा सकता है और साथ ही शिक्षा के क्षेत्र में आ रही चुनौतियों का युक्तिसंगत समाधान किया जा सकता है। संभव है कि प्रारम्भिक स्तर पर नवीन तकनीक अपनाने में कुछ विषमताएं आयें परन्तु उचित सहयोग और समन्वय से भविष्य से सकारात्मक परिणाम प्राप्त होंगे।

: सन्दर्भ सूची :

1. भारत-2002, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, लोधी रोड, नई दिल्ली।
2. वार्षिक रिपोर्ट 2009-10, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली।
3. वार्षिक रिपोर्ट 2009-10, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
4. भारतीय अर्थव्यवस्था, दत्त एवं सुन्दरम (2012), एस0 चॉद एण्ड क0 लि0, रामनगर, नई दिल्ली।
5. भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास, राम सकल पाण्डेय, अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
- 6- Census of India 2011 – Provisional Population Totals.

PASSION TOWARDS EXCELLENCE

SHIKSHA SAMVAD



An Online Quarterly Multi-Disciplinary
Peer-Reviewed or Refereed Research Journal
ISSN: 2584-0983 (Online) Impact-Factor, RPRI-3.87
Volume-01, Issue-03, March- 2024
www.shikshasamvad.com
Certificate Number-March-2024/01

Certificate Of Publication

This Certificate is proudly presented to

मनीष कुमार एवं डॉ० डॉ० धर्मेन्द्र सिंह

For publication of research paper title

“भारत में उच्च शिक्षा व्यवस्था में वर्तमान समय की आवश्यकताओं के
अनुरूप चुनौतियाँ, समस्याएँ एवं समाधान”

Published in ‘Shiksha Samvad’ Peer-Reviewed and Refereed Research Journal and
E-ISSN: 2584-0983(Online), Volume-01, Issue-03, Month March, Year- 2024,
Impact-Factor, RPRI-3.87.

Dr. Neeraj Yadav
Editor-In-Chief

Dr. Lohans Kumar Kalyani
Executive-chief- Editor

Note: This E-Certificate is valid with published paper and the paper
must be available online at www.shikshasamvad.com